गुरुकुलीय आयुर्वेद-परिषद्

रजत जयन्ती महोत्सव

सं० २००२ वि०

❀

सभापति

आयुर्वेदपंचानन श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल

संपादक 'सुधानिधि' प्रयाग, का

अभिभाषण

प्रकाशक

ब्रह्मचारी अमरनाथ १५श.

मंत्री—आयुर्वेद परिषद्

गुरुकुल विश्वविद्यालय

श्री धन्वन्तरये नमः

श्रीमते भरद्वाजाय नमः

श्रीमान् आयुर्वेदपरिषद् के अध्यक्ष महोदय ! और गुरुकुल कांगड़ी के आदरणीय सञ्चालक महोदयगण ! तथा उपस्थित आयुर्वेदधुरीण एवं आयुर्वेद-प्रेमी सज्जनगण !

यद्यपि इस गुरुकुल के दर्शन की यह मेरी चतुर्थ आवृत्ति है, तथापि इस वर्ष का आगमन एक विशेषता लिये हुए है। प्रथम बार मैं इस गुरुकुल में सन् १६२५ में स्वर्गीय जस्टिस गोकर्णनाथ मिश्र के साथ संयुक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद और यूनानी पद्धति की इनकायरी कमिटी के कार्य से कांगड़ी ग्राम में स्थित इस विश्वविद्यालय के परिदर्शन के लिये आया था। यद्यपि उस समय भीषण जलप्लावन से इसकी इमारतों को बहुत क्षति पहुँच चुकी थी तथापि कमिटी के सदस्यों ने जो कुछ देखा उससे वे बहुत प्रभावित हुए थे। विशेष कर गुरुकुल के छात्रों की वादविवाद-पटुता का सब पर अमिट प्रभाव पड़ा था। एकबार और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के काम से आकर कुछ विशिष्ट अध्यापकों और सञ्चालकों से सम्पर्क स्थापित करने में मुझे प्रसन्नता हुई थी। एक बार गोरखपुर-निवासी पहलवान बलदेव जी व्यायाम-शिक्षक से मिलने आकर विशेष विभागों को देखने का अवसर मिला था। इस बार आप लोगों के घनिष्ट सम्पर्क में आने का सुयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिये मैं परिषद् के सञ्चालकों और आयुर्वेदाचार्य पं० रामरक्षा पाठक और आयुर्वेदालंकार श्रीअत्रिदेव जी और श्री अमरनाथ जी का विशेष कृतज्ञ हूँ। मेरे लिये आप लोगों का यह प्रेम प्रदर्शन अभिमान की वस्तु है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की इस

विमल कीर्तिपताका के नीचे हम लोग ज्ञान - विज्ञान की चर्चा कर उनकी अमर-कीर्ति का ही विस्तार कर रहे हैं ।

वाद विवाद

गुरुकुल काँगड़ी को स्थापित हुए ४३ वर्ष हो चुके। इसमें आयुर्वेद की शिक्षा के प्रवेश को भी २८ वर्ष बीते। २४ वर्ष तो आयुर्वेद महाविद्यालय के स्थापन को हुए और उसी समय से आप की यह परिषद् भी है। इस परिषद् में अनेक बार इसकी चर्चा हो चुकी होगी कि वादविवाद का शास्त्रीय स्वरूप क्या है। अतएव मैं उसके विस्तार में नहीं जाना चाहता। इस देश के लिये यह कोई नवीन विषय भी नहीं है। इसका सूत्रपात वेदकाल से ही हो चुका था और उपनिषद् - काल में तो इसका विस्तृत स्वरूप देखा जाता है। चरक संहिता के विमान - स्थान में उसके दोनों भेदों का — सन्धायसम्भाषा और विगृह्यसम्भाषा परिषद् का—विस्तृत वर्णन है। विगृह्य सम्भाषापरिषद् तो विजय की-लालसा से की जाती है; अतएव यहां उसका प्रयोजन नहीं है। विषयों का विवेचन करने के लिये, उनके सन्दिग्ध भाव का दूरीकरण करने के लिये, शास्त्रीय ग्रन्थियों को सुलझाने के लिये सन्धायसम्भाषा परिषद् की योजना होती आयी है। इससे परस्पर ज्ञान वृद्धि का साधन सुलभ होता है, जयाजय की लालसा न रख तत्व निर्णय के लिये लोग ज्ञानोत्सुक हो, इसमें परस्पर चर्चा करते हैं। इसी लिये चरक में " भिषक् भिषजा-सह सम्भाषेत" कहा गया है। क्योंकि वह "ज्ञानाभियोग संहर्ष-कारी भवति" के अनुसार ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान की वृद्धि के लिये स्पर्धा उत्पन्न करती है। यही नहीं वह "वैशारद्यमपिचाभि निर्वर्तयति" अर्थात् शास्त्र ज्ञान में विशारद बनाती है, "वचन-

शक्तिमपि चाधत्ते, यशश्चापि दीपयति, पूर्वे श्रुते च सन्देहवतः पुनः श्रवणात् श्रुत सम्भावमपि चाधत्ते, श्रुतेचासन्देहवतो भूयोऽध्यवसायमभिनिर्वर्तयति, अश्रुतमपि च कंचिदर्थं श्रोतृविषयमापादयति"। इससे वचन-चातुरी आती है, यश चमकता है, पहले की सुनी हुई बातों में कुछ सन्देह रह गया हो तो फिर सुनने से सन्देह की निवृत्ति हो जाती है, सब बातें स्मरणपट में आजाने से अध्यवसाय की अधिक पूर्ति होती और व्युत्पत्ति बढ़ती है। जो बातें पहले नहीं सुनी थीं उन्हें सुनने का अवसर मिलता है; क्योंकि वादी-प्रतिवादी विजय की आकांक्षा से अथवा प्रशंसा की इच्छा से अपना पाण्डित्य प्रकट करने के लिये गुप्त-रहस्य की बातें भी प्रकट कर देते हैं, अपना दिल खोल कर रख देते हैं। "तस्मात् तद्विद्यसम्भाषां अभिप्रशंसन्ति कुशलाः" बुद्धिमान लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। इस परिषद् का आरम्भ कर आपने उसी मार्ग को अपनाया है और आज उसकी जुबिली मना रहे हैं। उत्तम तथा स्वतन्त्र शिक्षा प्रणाली के साथ ही ऐसी परिषदों को भी आपकी वाद-विवाद कुशलता, वक्तृत्वशक्ति की निपुणता, कुशाग्रबुद्धि और शंका-समाधान की पटुता को कारणीभूत समझना चाहिये। इस साधन के द्वारा आपका शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान संशय-रहित हो सकता है, आप के विश्वास में दृढ़ता आ सकती है। "न चैवं ह्यस्ति आयुर्वेदस्य सुतरां पारम्" आयुर्वेद के अपारज्ञान के भी आप समीप पहुंच सकते हैं।

ऐसी परिषदों से लाभान्वित होने के लिये मत्सरहीन होने की आवश्यकता है, दूसरों से जितना ग्रहण किया जा सके उतना ग्रहण करने की सदिच्छा होनी चाहिये, अपनी विद्या और बड़प्पन का व्यर्थ अभिमान न रख "कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतां

आचार्यः" के अनुसार विद्वानों को आचार्य तुल्य समझ अपने को शिष्य समझने वाला बुद्धिमानी के साथ ज्ञान ग्रहण करता रहता है। मत्सर-ग्रस्त मनुष्यों की बुद्धि मारी जाती है और वह सबको अपना शत्रु या प्रतिपक्षी समझता रहता है। चतुर तो वह है जो शत्रु से भी कीर्तिकारक, आयुष्यवर्धक और लोकहित-कारी ज्ञान सम्पादन करता रहता है। परिषद् - काल में प्रश्नोत्तर काल में क्रोध प्रदर्शन न कर विनय-शीलता के साथ सम्भाषण करने की आवश्यकता रहती है। परिश्रम से न थकने वाले मधुरभाषी वक्ता की प्रशंसा होती है। विश्वासपूर्वक शंका-समाधान के लिये प्रस्तुत रहना पड़ता है। पराजय की आशंका से जो घबडा जाता है, अथवा पराजय से जो लज्जित होता है अथवा विजय से जो उन्मत्त हो आत्मप्रशंसा में तत्पर होता है, वह ऐसी परिषदों का असली आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता। वाद-विवाद परिषदों में "न च मोहात् एकान्तग्राही स्यात्" अपनी ही बात का हठ लेकर अड़े रहने से काम नहीं चलता। शास्त्रविरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन न तो स्वयं करना चाहिये न अपने प्रतिवादी पर लादना चाहिये। आप लोगों ने इस प्रकार की परिषद का उपक्रम कर बहुत बुद्धिमानी का काम किया है। शास्त्रचर्चा और ज्ञान-संरक्षण के लिये यह उपयुक्त मार्ग है। " वादे वादे जायते तत्वबोधः" तत्वबोध के लिये वादविवाद आवश्यक है। कितना ही जगद्वन्द्य विद्वान् हो वह अकेले शास्त्र में नवीन पूर्ति करने में समर्थ नहीं हो सकता। उसे भी अपने प्रतिपादन विषय को लोकमान्यता की प्राप्ति करानी ही पड़ती है। इस कार्य के लिये विनयशील और सहनशील होना पड़ता है। इस समय आयुर्वेद जगत् में अनेक विषय ऐसे हैं जिनका समाधान इसी पद्धति

से हो सकता है। शुद्धिवाद के मिथ्याग्रह में पड़ हमें जहां के तहां पड़े रहना है अथवा समय की गति और समय की मांग के लिये आग्रही हो अपनी पूर्ति कर पूर्ण कुशल बन आयुर्वैदिक स्वराज्य संभालने के योग्य बनना है? प्रतिद्वन्द्विता के मैदान में अपने को पूर्ण समथ बनाये बिना हमें विजयश्री कैसे प्राप्त होगी, यह विचारणीय विषय है। आप की परिषद् से ऐसी समस्याओं के सुलझाने में सहायता मिल सकती है; अतएव मैं इसे महत्मपूर्ण मानता हूँ और इसके सुफल उद्योग की सफलता चाहता हूँ।

वर्तमान विश्वविद्यालय और गुरुकुल

यह प्रश्न हो सकता है कि भारत में कितने ही विश्वविद्यालय रहने पर भी ऐसे गुरुकुल और ऋषिकुल स्थापित करने की आवश्यकता क्यों हुई? स्पष्ट है कि वर्तमान विश्वविद्यालय और उनके सञ्चालन का ढंग न तो हमारी कल्पना है और न उनसे हमारी परम्परा और शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति ही होती है। शासक जाति ने अपना शासन सूत्र सञ्चालन करने देश को गुलाम बनाये रखने के निमत्त नौकरी पर निर्भर रहने वाले गुलाम ढालने लिये यह शिक्षणयन्त्र तैयार किये थे और वे वह कार्य धड़ाधड़ कर रहे हैं। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के शारीरिक-मानसिक और आध्यात्मक विकास कर उत्तम नागरिक बनाना है; जिससे वह अपने ऐहिक कर्तव्यों का अपनी परम्परा और आवश्यकता के अनुसार पालन करता हुआ चरमोन्नति प्राप्त कर सके। देश को सब प्रकार के हानिकर बन्धनों से मुक्त रख स्वयं भी मोक्ष का अधिकारी हो सके। किन्तु आजकल की

शिक्षा अधिकांश में उद्देश्यहीन नकली नागरिक तैयार कर सकती है, धर्म से कोरे, सदाचार से हीन, आर्यजनोचित्त व्यवहार और शिष्ट संस्कृति से दूर, स्वास्थ्य और शारीरिक सम्पत्ति से शून्यप्राय नागरिकों को देख विचारशील मनीषियों में नैराश्य-भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है और उस निराशाजनित बेबसी को दूर करने के लिये राष्ट्रीय शिक्षा के उद्योग का परिणाम ये गुरुकुल और ऋषिकुल हैं। इसीलिये जिन महात्माओं की कल्पना के ये प्रतिफल हमारे सामने हैं, हम उनके कृतज्ञ हैं। महामना मालवीय जी का हिन्दू विश्वविद्यालय भी यद्यपि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध विप्लवी भावनाओं का प्रतीक है किन्तु सांचा पुराने ढङ्ग का होने के कारण वह पूर्व प्रतीज्ञा और धारणा के अनुसार भरद्वाज और वशिष्ठ बनाने में सफल न हो सका। हाँ किसी अंश में स्वावलम्बी मार्ग के पथिक तैयार करने में अवश्य कृतकार्य हुआ।

यदि भारतीय परम्परा और भावनाओं को लेकर विश्व-विद्यालयों की कल्पना की जाती तो न तो शिक्षा इतनी खर्चीली होती और न निराशा उत्पन्न करने वाले युवक ढालने का ही काम वह करने पाते। पूर्वकालीन महर्षि भारद्वाज, वशिष्ठ, अगस्त्य आदि ऋषियों के आश्रम भी विश्वविद्यालय थे और उनमें दश दश हजार तक विद्यार्थी अपने गुरुओं के समीप रहकर बिना विशेष व्यय के चरितार्थ करते हुए विद्वान् बनते थे और चलते समय अन्त में कुछ गुरु दक्षिणा देकर ठोस विद्या ले घर आ जाते थे; किन्तु आज माता-पिता की बहुमूल्य पूंजी गँवाकर भी अधिकांश स्नातक नौकरी की तलाश करने वाले शून्यमस्तिक और विचित्र भावनाएं लेकर घर आते हैं। गुरु-आश्रम जनित

विश्वविद्यालयों के पश्चात तक्षशिला और नालन्दा के ढङ्ग के विश्वविद्यालयों ने विश्व को विद्यादान करने में कम सफलता नहीं पायी थी; किन्तु आज विश्व को आश्रय देना तो दूर की बात है शिक्षा के लिये विश्व भर में भटकने पर भी थोड़े ही सफल नागरिक हमारे देश में बन पाते हैं। हमारे इन गुरुकुलों की ओर यद्यपि जनता का आकर्षण अच्छा है तथापि हमारे देश में इतने उदार धनी कितने हैं जो अमेरिका के हाफकिंस के समान अकेले दो ढाई करोड़ रुपये (७० लाख डालर) विद्या-दान के लिए दे डालें। इसीलिये विविधकला कौशल्य और औद्योगिक शिक्षा के राष्ट्रीय-करण होने में विलम्ब हो रहा है। जब तक राष्ट्र का सूत्र संचालन राष्ट्रीयों के हाथ में न हो तब तक राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाली सफल राष्ट्रीय शिक्षा प्रवृत्ति और उसकी परिणति भी कैसे होसकती है। वर्तमान गुरुकुल और अन्य राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं ने अपनी सफलता की छाप अङ्कित कर आदर्श उपस्थित कर दिया है; किन्तु इस कल्पना की मूर्ति का भव्य शृङ्गार और पूर्ण सफलता राष्ट्रीय सरकार होने पर ही हो सकती है। जब तक राष्ट्र और राष्ट्र - शासन - यन्त्र का पूर्ण मेल नहीं होता, जब तक जनता और शासक वर्ग की भावनाएं और विचार परम्पराएं, आकांक्षा और उपाय-विनियोग में समानता नहीं होती, तब तक राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ण पूर्ति में सफलता नहीं हो सकता। किसी देश का ज्ञान–विज्ञान तब तक पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता, जब तक उसे राष्ट्रीय जनता और सरकार से पूर्ण सहायता प्राप्त नहीं होती। हमारे सब उद्योग इसी प्रत्याशा के लिये उद्ग्रीव हो रहे हैं।

पराधीनता का अभिशाप

पराधीनता का अभिशाप इतना भयङ्कर है कि उसके कटु फल चखते चखते हम जर्जरित हो गये हैं, व्याकुल होकर त्राहि त्राहि कर रहे हैं। हमारी छटपटाहट और विवशता पर सहानुभूति के भाव दर्शित होना तो दूर रहा हमें पराजित करने वाला दानव अपनी सफलता पर प्रसन्न होता हुआ अट्टहास कर हमारा विद्रूप कर रहा है। वह हमारे तन ही नहीं मनको भी दुर्बल बना कर आत्म-गौरव-शून्य बना देना चाहता है। हमारे पूर्व-इतिहास को विकृत रूप में रख यह भासित कराना चाहता है कि सदा से तुम थोड़े निरीह और अकिंचन गुलाम रहे हो। हमें बतलाया जाता है कि हम इस पवित्र भारत-भूमि के आदि निवासी नहीं, माँगते खाते मध्यएशिया से आये थे। इस बातका प्रयत्न किया जाता है कि हम यह विश्वास करने लगें कि समस्त ज्ञान-विज्ञान हमें दूसरे देशों से प्राप्त हुआ है। प्रमाणाभाव में लाचार हो ज्ञान-विज्ञान के आदि स्रोत वेदों को गड़रियों के गीत कहा जाता है और अनादि तथा अपौरुषेय होते हुए भी उनका समय खींचतान कर अधिक से अधिक निकट आधुनिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। खूबी तो यह है कि इन्हीं को आंखों देखने वाले हमारे विद्वान् और खोजी कहाने वाले देशी भाई भी उन्हीं के विकृत स्वर में गर्दभतान अलापने लगते हैं। अतएव हमें आत्म-स्वरूप के प्रकाशनार्थ चारों ओर से प्रयत्न-शील होना है।

और बातों को जाने दीजिये इस पराधीनता ने जगद्गुरु आयुर्वेद की ही क्या स्थिति कर रखी है? जिसका स्रोत वेद-

द्रष्टा ब्रह्मा से प्रवाहित होता हुआ दक्ष, अश्विनीकुमार, देवराज से भरद्वाज धन्वतरि, आत्रेय, कश्यप, सुश्रुत, चरक आदि द्वारा प्रवाहित हो उन्नति के साथ जगत् को आप्यायित करता आया है, वह अवैज्ञानिक और कुछ टोटकों का संग्रह-मात्र बतलाया जाने लगा। उसके प्रवतक वैद्य अतायी और किसी प्रकार की सहायता और महानुभूति के अयोग्य कहे जाने लगे सभी प्रान्तों ने कायदे बना कर डाक्टरोंका दर्जा बढ़ाया और वैद्यों को सहायता के लिये अपात्र ठहराया। इसके पहले ही प्रतिक्रिया हुई। ईश्वरी-शक्ति और प्रेरणा से प्रेरित होकर स्वर्गीय शंकर दाजी शास्त्री पदे ने आयुर्वेद के उत्थान का बीड़ा उठाया और उनके साथी सहयोगी और अनुयायी मैदान में आये। वैद्यसम्मेलन का डंका बजा। देश की सोई हुई आत्मशक्ति हडबड़ा कर जागृत हुई। सभा और सम्मेलनों की धूम मची, जहां तहां धर्मार्थ औषधालय और आयुर्वेद विद्यालय स्थापित होने लगे। आयुर्वेद विद्यापीठ ने एक आदर्श पाठ्य क्रम तैयार किया। अन्य संस्थाओंने भी शिक्षा और परीक्षा की विधि अपनायी। वैद्यों का एक संगठित दल तैयार होने लगा। कौंसिलों और एसेम्बलियों में उसके पक्ष में चर्चा होने लगी। जो पद्धति दो सौ वर्षों से सरकारी सहायता के बल पर मोटी होती आ रही थी वह चिन्तित हुई और आयुर्वेद का संगठित विरोध हुआ किन्तु जन नायकों की आवाज दबाये न दबी। आखिर मद्रास, बंगाल और संयुक्तप्रान्तीय सरकारों ने जांच कमीशन या इनकायरी कमैटी नियुक्त की। सचाई छिपाये न छिपी। यह सिद्ध हुआ कि देशी-चिकित्सा-पद्धति वैज्ञानिक है, उसकी एक परम्परा है और बिना किसी सहायता के भी इस समय भी देश की ८० फीसदी

जनता उससे लाभान्वित हो रही है। अतएव वह सब तरह से सरकारी सहायता की अधिकारिणी है। फल स्वरूप मद्रास में एक आयुर्वेदिक और एक यूनानि स्कूल खुला और वैद्य हकीमों की रजिस्ट्री आरम्भ हुई। बंगाल में भी शिक्षा की फैकल्टी बनी और रजिस्ट्री होने लगी। संयुक्तप्रान्त में बोर्ड आफ इण्डियनमेडिसिन बना, उसने शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया, परीक्षा का उपक्रम हुआ, वैद्य हकीमों की रजिस्ट्री होने लगी और ५० हजार रुपये साल आयुर्वेदिक और यूनानी संस्थाओं तथा देहाती औषधालयों को सहायता देने के लिये रखा गया। बिहार में भी एक स्कूल खुला।

इन घटनाओं से लोगों ने समझा कि युग परिवर्तन हो रहा है। इसी बीच सन् ३५ के सुधारों के अनुसार असेम्बलियों का का चुनाव हुआ। कई प्रान्तों में कांग्रेस विजयी हुई। और सात प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्री मण्डल शासनारूढ हुआ। जनता में कुछ जीवनी शक्ति का सञ्चार होने लगा। बम्बई, मद्रास और संयुक्तप्रान्त में मेडिसिन ऐक्ट बने। ग्राम सुधार की योजना प्रचलित हुई और संयुक्तप्रान्त में लगभग २०० देशी औषधालय देहातों में जारी किये गये। वैद्यों को साधारण चीरफाड़ के योग्य अस्त्रशस्त्र देने की बात कही गयी और उन्हें सर्टिफिकेट देने का भी अधिकार मिला। समझा जाने लगा कि क्रमशः वैद्य भी रजिस्टर्ड डाक्टरों के समान अधिकार भागी बन सकेंगे। इसी बीच महासमर छिड़ा। जनता के प्रतिनिधियों की राय लिये बिना भारत युद्ध में प्रवृत्त किया गया और बार बार मांग होने पर भी युद्धका उद्देश्य भारत को बतलाया न गया कांग्रेसी मन्त्रि-

मण्डलों ने इस्तीफे दिये। बिना कौंसिल एसेम्बली के सलाह-कारों (एडवाइजरों) की सहायता से गवर्नरी शासन आरम्भ हुआ।

प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। मानो सरकार ने सोचा कि कुछ गलती होगई है, उसका संशोधन आवश्यक है। बम्बई और मद्रास के मेडिसिन ऐक्ट पहले ही डाक्टरों के द्वारा बने थे और उनमें वैद्यों के पीछे ढकेलने की प्रतिक्रिया पहले से ही थी, इसलिये वे जारी रहे। परन्तु संयुक्तप्रान्तीय ऐक्ट के द्वारा वैद्यों को कुछ वास्तविक अधिकार मिल रहे थे, उनकी उन्नति सम्भावना के तत्व उसमें मौजूद थे इसलिये पास होने पर भी वह जारी नहीं किया गया। बम्बई में अनरजिस्टर्ड वैद्यों की प्रैक्टिस रोकी गई और मद्रासी वैद्यों के सामने भी कई विभीषिकाएं उपस्थित हुईं। हमारे प्रान्त के एडवाइजर डाक्टर पन्नालाल एक विद्वान् थे और वे देशी चिकित्सापद्धति की हितकामना की बातें भी करते थे। परन्तु उनके शासनकाल में जो कुछ हुआ उससे वैद्य हकीम कराह उठे। सबसे पहले उन वैद्यों की रजिस्ट्री बन्द हुई जो अपनी योग्यता, अनुभव और जनप्रियता के आधार पर रजिस्ट्री करा सकते थे। इसके बाद राष्ट्रीय संस्थाओं पर प्रहार हुआ। आयुर्वेद विद्यापीठ, हिन्दीसाहित्य सम्मेलन, गुरुकुल, डी. ए. वी. कालेज, तिब्बिया कालेज, अष्टांग आयुर्वेद कालेज आदि के स्नातक अनक्वालिफाइड करार देकर रजिस्ट्री के हक से वंचित किये गये। देहात के जिन औषधालयों को कुछ ग्रांट मिलती थी वह यह कहकर बन्द की गई कि जो हिन्दू-यूनिवर्सिटी और इण्डियन मेडिसिन बोर्ड की परीक्षा पास हैं केवल उन्हें ही सहायता मिलेगी। दुर्भाग्य से ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं

अतएव देहाती जनता औषधि सहायता से विमुख रही। कुछ कुछ राष्ट्रीय आयुर्वेदिक संस्थाओं को सहायता मिल जाती थी, वे भी वंचित की गईं।

यद्यपि ग्रामसुधार औषधालयों के वैद्य पब्लिक सर्विस कमीशनों के द्वारा बहुत जांचकर रखे गये थे और अब तक के उनके काम में कोई त्रुटि भी नहीं दिखाई पड़ी तथापि उन्हें जो सर्टिफिकेट देने का अधिकार मिला था वह छीन लिया गया। वे एक चिकित्सक की हैसियत से न किसी को सर्टिफिकेट दे सकते और न अदालत में उपस्थित होकर गवाही दे सकते हैं।* कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने ग्राम सुधार वैद्यों को साधारण चीरफाड़ के लिये पचास रुपये तक के अस्त्रशस्त्र देने के लिये कहा था; परन्तु अस्त्र-शस्त्र के रूप में उन्हें चाकू कैंची, लोटा, थाली, कड़छुल, कढ़ाई और बाल्टी नामक इनस्ट्रूमेंट दिये गये। जब इसके विरुद्ध आवाज उठायी गयी तब डांट के साथ हुकम निकला कि खबरदार कोई वैद्य चीरफाड का नाम ले, वह शस्त्र चिकित्सा नहीं कर सकता! कुछ वैद्यों ने दरख्वास्त दी कि हमें भी युद्ध में बीमार और घायल सैनिकों की सेवा का अवसर दिया जाय। उनसे कहा गया कि तुम कम्पौंडरी कर सकते हो तो आ सकते हो। देहातों में कुछ वैद्य और हकीम हैल्थ असिस्टेंट नियुक्त हुए हैं और वे सफलता पूर्व अपना काम भी कर रहे हैं; किन्तु धीरे धीरे उन्हें निकालने की तजवीज हो रही है। उनकी जगह

---

* अब कुछ परिमित सीमा में निम्न कोटि के उन सरकारी नौकरों को सार्टिफिकेट देने का अधिकार मिला है जो देहातों में में जाकर बीमार पड़ें।

फौज से लौटे हुए सैनिक भरती होंगे। पराधीनता के ये अभि-
शाप क्या खून खौलाने देने के लिये काफी नहीं हैं?

किन्तु हमारे उपमर्द और अपमान का अन्त यहीं नहीं होता। सभी प्रान्तों में युद्ध के पश्चात् कुछ विधायक कार्य होने वाले हैं, उनसे कुछ मेडिकल और पबलिक हेल्थ के काम भी हैं। हमारी यू० पी० सरकार भी पाँच सात वर्षों तक मेडिकल कार्यों में लगभग दो करोड़ रुपया प्रतिवर्ष खर्च करना चाहती है। प्रान्त में इस समय दो मेडिकल कालेज हैं; परन्तु उससे ही सन्तोष न कर सरकार कानपुर में और सम्भवतः बनारस और अलीगढ़ में भी और नये कालेज खोलना चाहती है। कई अस्पताल और तहसीलों में अस्पताल तथा देहातों में डाक्टरों को बसाकर सैकड़ों एलोपैथी को डिसपेंसरियां खोलने की योजना हो रही है। किन्तु देहातों में जो वैद्य हकीम सहानुभूति और सफलता के साथ जनता की सेवा करते आ रहे हैं, उनके सामने टुकड़े फेंकने की ही तजवीज हो रही है। इतने बड़े प्रान्त में एक भी सरकारी आयुर्वेद कालेज नहीं है, उसकी ओर न तो सरकार की प्रवृत्ति दिखती है और न तैयारी के कोई लक्षण दिखते; किन्तु कुछ देशहितैषियों के द्वारा भी ऐसे कालेज न खुल पावें उसकी तैयारी दीख रही है। यू० पी० सरकार चाहती है कि यदि कोई सज्जन या संस्था आयुर्वेदिक कालेज खोलने की हिम्मत करना चाहे, तो पहले उसे दो लाख रुपये की पूँजी और बढ़िया इमारत दिखानी होगी; और दिखानी होगी पांच हजार रुपये साल की स्थायी आमदनी की स्थिति। यही नहीं उसे ५० रोगियों को रखने योग्य मयसामान के अस्पताल, औषधालय, फार्मेसी, शवच्छेदालय, सर्जरी का विभाग, उद्यान, पुस्तकालय साइंस

और कैमिस्ट्री का भरपूर सामान, एनाटमी फिजियालोजी और पैथौलौजी का संग्रहालय। इसके बिना उसे सरकारी स्वीकृति नहीं मिलेगी! न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगीं। एलोपैथी का नंगा नाच ही देश को देखना पड़ेगा।

आशाजनक प्रकाश

अब यह पराधीना की परवंशता बरदाश्त के बाहर हो चुकी है। अब हमारे रोमरोम से रक्षा की पुकार उठ रही है। जब पृथ्वी त्रस्त होती है तब भगवान के शरण जाती है और उनसे आत्मरक्षा का आश्वासन मांगती है। भगवान अपने भक्तों की कातर प्रार्थना कभी अस्वीकार नही करते। यही हमारी आशा का भरोसा है, यही हमारा सम्बल है। "यही आस अटक्यों रह्यो अलि गुलाब के मूल। ह्वहे बहुरि बसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल।" भारतीय क्षितिज पर उषा की लालिमा प्रकट हो रही है भविष्य आशा-प्रकाश की किरणें फूटना चाहती है। भारतीय शक्ति जागृत हो रही है। स्वतन्त्रता के लिये छटपटाती हुई भारतीय आकाँक्षा बेसबरी से उठकर आत्मबल, आत्मगौरव और आत्म निरीक्षण के लिये सन्नद्ध है। दुनिया हमारे उत्थान का स्वागत करने को प्रस्तुत है। अब हमारी स्वतन्त्रता किसी के रोके रुक नहीं सकती। कम से कम भविष्य असेम्बलियों के चुनाव के विजय रूप में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की सम्भावना निश्चित सी है। अपनी राष्ट्रीय सरकार के सामने हम अपनी अवस्था का निवेदन कर सकेंगे, अपनी योग्यता शक्ति का प्रदर्शन कर सकेंगे। अपने राष्ट्रीय नेताओं के संशय भ्रम का निवारण करने का हम प्रयत्न करेंगे। अपनी योजना, राष्ट्रीय

भावना, स्वदेशी चिकित्सा पद्धति के अवलम्बन की आवश्यकता उन्हें सुझाने का उद्यो करेंगे। अब हमारी दृष्टि राष्ट्रीय शक्ति के विकास पर केन्द्रित रही है। हम अनाथ और अनाश्रित अवस्था से उठ कर अपना ख्याल प्रकाशित करना चाहते हैं, अपने विचार रूप को प्रकट करना चाहते हैं। हमने एक हजार वर्ष से ठोंकरें सही हैं हमारे साथ साहनुभूति और समवेदना प्रकाशित करनेका अभाव रहा है। हमारी आंखों के तेखते, हम में देश सेवा का तत्परता और योग्यता के रहते हमारे पैसों से हमारे देश में एक विदेशी चिकित्सा पद्धति को दो सौ वर्ष से पुचकारा जा रहा है, उसे ही स्वीकार करने के लिये देशके मस्तिष्को का भरा जा रहा है उसकी तड़क-भड़क और चुटलबाजी ने बहुतों को मोहित कर रखा है। अब हम इस मोह निद्रा को दूर करनेका प्रयत्न करेंगे। मोहमयी प्रमाद मदिरा को पीकर जो उन्मत या विचार विभ्रम में है उनका प्रमाद हमें दूर करना है। अपनी राष्ट्रीय चिकित्सा को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाकर उसे राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति स्वीकार कराना है। राष्ट्रीय स्वराज्य की सिद्धि कर देश के मेडिकल डिपार्टमेंट और पबलिक हेल्थ डिपार्टमेंट क्रमशः अपने हाथों में ले, उनका सूत्र संचालन करना है। समस्त देशवासियों के साथ ही आयुर्वेद प्रेमियों और वैद्यों को भी ऐसा प्रयत्न करना है जिससे राष्ट्रीय पक्ष अगले चुनाव में विजयी हो। जिसके सामने हम अपनी योजनाएँ रख सकें, अपना गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त करने का उपक्रम कर सकें। परमुखापेक्षी रहने से हमारी असली अकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होगी। राष्ट्रीय भावनाओं

का भव्य भण्डार राष्ट्रीय सरकार के ही समय पूर्ण होगा। अतएव हम उसी के स्वागत के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

शिक्षा में संशोधन

साधारण शिक्षा—हमारी आकांक्षाएं बहुत हैं हम आयुर्वैदिक शिक्षा में ही नहीं; सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन चाहते हैं। साधारण शिक्षा में परिवर्तन हुए बिना आयुर्वैदिक शिक्षा सरलता और सुविधा के साथ दी नहीं जा सकती। अन्य देशों की चिकित्सा पद्धति केवल चिकित्सा से सम्बन्ध रखती है; किन्तु हमारा आयुर्वैदिक वेदों का अंग होने के कारण हमारे धर्म, हमारे आचार, हमारी संस्कृति, हमारे समाज, हमारे नित्य नैमित्तिक व्यवहार यहां तक कि मानव जन्म के कर्तव्य पूर्ति के साधन स्वरूप पुरुषार्थ चतुष्टय का साधक है। आयुर्वेद हमारी नस नस में व्याप्त है। वह हमारे जीवन का प्राणवायु है, हमारे शक्ति समुच्च का बिजली घर है। प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही हम उसका प्रारम्भ देखना चाहते हैं। प्रायमरी शिक्षा के साथ ही घरों, रास्तों और ग्रामों की सफ़ाई व्यक्तिगत और समाजगत स्वच्छता एवं आरोग्य की स्थूल बातें, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रि-चर्या और सदाचार तथा सामाजिक व्यवहार की बातें हमारे बालकों को आनी चाहियें। मिडिल स्कूलों में संक्रामक व्याधियों का ज्ञान और उन्हें रोकने तथा उनसे बचने के उपायों का ज्ञान करा देना चाहिये। यही नहीं अपघात और उनकी प्रारम्भिक चिकित्सा तथा ऐसे रोगियों की सुश्रूषा की विधि हमारे नवयुवकों को आनी चाहिये। प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा की कड़ी विश्वविद्यालय की शिक्षा से मिल जानी चाहि-

ये। युनिवर्सिटियों की उच्च शिक्षा की परम्परा जब तक प्रारम्भिक शिक्षा से मिलेगी नहीं तब तक शिक्षा की क्रमिक वृद्धि को पूर्णता का स्वरूप नहीं मिलेगा। १५ सोलह वर्ष के विद्यार्थी को जैसे अपनी प्रान्तीय भाषा-अपनी मातृ-भाषा शुद्ध रूप से लिखने पढ़ने की शक्ति होनी चाहिये उसी तरह देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान भी होने लग जाना चाहिये। अपना इतिहास शुद्ध रूप में विद्यार्थियों को जानना चाहिये, उसे सृष्टिशास्त्र और मानसशास्त्र के मूलतत्व ज्ञात होना चाहिये। उदाहरणों के द्वारा तर्क शास्त्र की शिक्षा का भी आरम्भ हो जाना चाहिये। अपने देश के पशु पक्षी, खनिज और बनस्पतियों का स्थूल ज्ञान भी साधारण शिक्षा के समय ही हो जाना चाहिये। व्यर्थ के विषयों के बोझ से विद्यार्थियों को बचाना चाहिये।

उच्च शिक्षा—आरम्भ में शिक्षा ऐसी दी जाय कि आगे चल कर विद्यार्थी कला, व्यापार, उद्योग आदि शास्त्रीय ज्ञान की शिक्षा बिना अड़चन के ले सके। उसकी बुद्धि का विकास हो और वह आगे चलकर स्वतन्त्र जीविका सञ्चालन योग्य गृहस्थ बन सके। वह अपने देश और समाज के लिये उपयोगी बन सके। वह भविष्य में उत्तम लेखक, अच्छा वक्ता, उपयुक्त नेता, कुशल चिकित्सक, सदसविवेक बुद्धि वाला न्यायाधीश, शास्त्रीय विद्वान् आदि बन सके! हमारे यहां पहले जमाने में साधारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी अभिरुचि के किसी एक शास्त्र में मनुष्य पूर्ण विद्वान् बनने का प्रयत्न करता था। किन्तु आज कल की शिक्षा की सार्थकता पल्लव ग्राही पाण्डित्य प्राप्त करा देने मात्र में समझी जाती है। आजकल सामाजिक जीवनक्रम उलझन वाला और

महँगा बन गया है. मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ गयी हैं। वे २०, २५ वर्ष की उमर में इतने कुशल बना दिये जायँ कि अपना चरितार्थ चला सकें। इसके पश्चात् जिन्हें सुविधा हो वे उदात्त उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों में जावें। उच्च शिक्षा का ध्येय आत्मोन्नत्ति के साथ ही अपने देशको वैभव शाली बनाने और अपनी जन्मभूमि की कीर्ति विस्तारित करने का होना चाहिए। जिस विद्वान् की विद्यायें देशबन्धुओं का भला न हो वह उच्च शिक्षा कैसी ? प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के आधार भूत विषयों को लेकर शास्त्रीय शिक्षा की पुष्टि करना उच्च शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये। हमारे इतिहास की बहुत सी सामग्री हमारे इतिहास-पुराण ग्रन्थों में सुरक्षित है उसे अपने ढंग से संकलित कर उपयोग में लाना चाहिये। शिलालेखों पुराने कागजातों से भी ऐसी पूर्ति हो सकती है। पुस्तकालय और संग्रहालय हमारी सस्कृति को बताने वाले साधन हैं। भूगर्भशास्त्र वनस्पतिशास्त्र, शरीर शास्त्र, प्राणिशास्त्र, जीवनशास्त्र रसायन-शास्त्र, पदार्थविज्ञान की शिक्षा सभी के लिये लाभप्रद है। इनके स्थूल सिद्धान्त मध्यम शिक्षा के साथ ही बतला दिये जा सकते हैं। इनकी शिक्षा केवल पुस्तकी, नहीं सप्रयोग होनी चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षा में गणित सामान्य हो तो हानि नहीं। विश्व-विद्यालयों में प्रवेश करने के नियम बहुत कड़े नहीं होने चाहिये। यदि कोई विशिष्ट स्थिति और तीक्ष्ण बुद्धिवाला मनुष्य प्रवेशिका उत्तीर्ण न हो किन्तु विद्यालय की उच्च शिक्षा लेना चाहता है तो उसके लिये आवश्यक सुविधा मिलनी चाहिये। आयुर्वेदिक शिक्षा में प्रविष्ट होने वालों के लिये भी ऐसी प्रवेश परीक्षा की सख्ती नहीं रहनी चाहिये। भारतीय विश्वविद्यालयों की सबसे

बड़ी त्रुटि ही नहीं नन्दनीय स्थिति यह है कि उन्होंने एक विदेशी चिकित्सा पद्धति का तो पुरस्कार किया है, किन्तु देश की राष्ट्रीय और सर्वजनोपयोगी आयुर्वेदीय शिक्षा का बहिष्कार कर रखा है। अनेक अंशों में यूनिवर्सिटयां स्वतन्त्र हैं; किन्तु इस सम्बन्ध में वे अपने स्वतन्त्र विचार का परिचय कब देंगी इसे वे ही जानें अवश्य ही एक हिन्दूविश्वविद्यालय इसमें अपवादस्वरूप है। इस सम्बन्ध में तो गुरुकुल और ऋषिकुल ने बाजी मारली है और मानों विश्वविद्यालयों को चुनौती दी है।

आयुर्वेदिक शिक्षा

बाधक कारण— कुछ बाह्य कारण से ऐसे हैं जो आयुर्वेदिक शिक्षा में बाधक हो रहे हैं। जबतक भव्य इमारत न हो तब तक आयुर्वेद की शिक्षा न दी जा सके ऐसी परिस्थिति सचमुच न होनी चाहिये। किन्तु सरकार ही नहीं जनता भी इमारतों की ऊंचाई और विशालता पर संस्था का महत्व अंकना चाहती है। निस्सन्देह, अस्पताल, संग्रहालय, पुस्तकालय पदार्थ विज्ञान और रसायनशास्त्र के लिये पक्की इमारत की आवश्यकता है; किन्तु अन्य विभागों का काम सामान्य इमारत से भी चल सकता है। अतएव दो लाख की पूंजी और विशाल इमारत का दुराग्रह अडंगा रूप है। अस्पताल की आवश्यकता आवश्यक है; परन्तु उसमें ५० रोगियों के लिये पलङ्ग बिस्तर आदि होने ही चाहिये यह शर्त असुविधा जनक है। विद्यालय का गौरव इमारत से नहीं अध्यापकों और विद्यार्थियों की योग्यता से बढ़ता है आधुनिक पदार्थविज्ञान का बहुत थोड़ा अंश आयुर्वेदिक शिक्षा में

अपेक्षित है, इसी तरह कैमिस्ट्री का भी धातुओं की भस्म आदि समझने की सामान्य अपेक्षा है। अतः इनके लिये बहुत श्रम और सामान अनिवार्य ही हो ऐसी स्थिति नहीं है। सरकार स्वयं तो कालेज खोलती नहीं, जो उत्साही खोलना चाहते हैं। उनका उत्साह भंग करने को शर्तें रखती हैं और तमाशा यह कि राष्ट्रीय संस्थाओं के विद्यालयों को और उनकी परीक्षाओं को उचित सुविधाओं के साथ स्वीकार करना चाहिये और जो लोग सरकारी स्वीकृति चाहते हैं उन्हें उदार सहायता देनी चाहिये। राष्ट्रीय संस्थाओं को सरकार यह कह कर अस्वीकार करती है कि उनमें प्रत्यक्ष कर्माभ्यास और प्रयोग साधन की सम्यक् सुविधा नहीं रहती। सरकार चाहे तो उनके लिये प्रत्यक्ष कर्माभ्यास सम्बन्धी अंग को कुछ दिनों की शिक्षा देकर पृथक् परीक्षा की सुविधा कर सकती है इसके सिवाय इस कलंक को मिटाने के लिये आयुर्वेद विद्यापीठ और अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं को मिल कर सम्मलित शक्ति से एक ट्रेनिंग कक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। यद्यपि वर्तमान परिस्थिति में वैद्यों को शारीर, शवच्छेद, शस्त्र कर्म और विकृति-विज्ञान सम्बन्धी विषयों का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त करने में कुछ अंग्रेजी जानने की आवश्यकता है तथापि आयुर्वेद कालेज में भरती होने के लिये उन्हें मट्रिक होना ही चाहिये यह आवश्यक आग्रह है। मेट्रिक वाले विद्यार्थी पाश्चात्य विषयों को कुछ सुविधा के साथ भले ही ग्रहण करलें किन्तु संस्कृत की कमजोरी के कारण वे आयुर्वेद संहिताओं को अच्छी तरह समझ नहीं सकते अतएव आदर्श चिकित्सक होने लिये संस्कृत का ज्ञान कहीं अधिक आवश्यक है। इस अंश में सरकार स्वीकृत कालेजों की अपेक्षा गुरुकुल आदि राष्ट्रीय कालेज अधिक

सफल हुए हैं। समस्तवाधक कारणों की जांच कर उन्हें दूर करना अभीष्ट है।

अङ्गों की पूर्ति—आयुर्वेद शिक्षा का मुख्य हेतु शरीर संरक्षण कर रोग न होने देना और यदि कदाचित रोग हो ही जाय तो उसका परिहार करना है। इसी लिये चिकित्सा ज्ञान के पहले स्वथवृत्ति की शिक्षा दी जाती है। यदि प्रारंभिक शिक्षा के साथ इस सम्बन्ध की स्थूल बातें बतला दी जायें तो आयुर्वेद कालेज में उसके वैज्ञानिक अंश और रोग के पहले आरोग्य का ज्ञान प्राप्त करना रह जाय। प्रारंभिक शिक्षा के साथ शरीर के मुख्य भाग और उनके कार्य बतला दिये जायें तो आयुर्वेद कालेज में शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान की शास्त्रीय बातें ही सीखना रह जाय। हां, इन्द्रियविज्ञान को शास्त्रीय ढंग से कालेज में ही बताना पड़ेगा। हमारे आयुर्वेद के आठ अङ्ग है और उनकी शिक्षा हमारे कालिजों में होनी ही चाहिये किन्तु इन अङ्गों में पूर्ति रूप से कुछ बातों का समावेश करना पड़ेगा। निघण्टु के साथ यद्यपि वनस्पति शास्त्र उसका आवश्यक नहीं तथापि उसकी कुछ बातें समयानुसार जानना आवश्यक है। विशेष कर रस वीर्यविपाक और प्रभाव के ज्ञान के साथ औषधिधर्म शास्त्र (थेराटयूटिस) जानना आवश्यक है, जिससे समझा जाय कि जीवित शरीर में किस औषधि की कैसी क्रिया घटित होता है। इसके ज्ञानसे इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र की पूर्णता हो सकेगी।

शिक्षाकाल—जब तक प्रारम्भिक और माध्यमिक शालाओं के शिक्षाक्रम में अपेक्षित सुधार नहीं होता तब तक कालेजों का

पाठ्यक्रम ५ वर्ष रखे बिना काम नहीं चल सकता। अन्यथा अष्टाङ्गशिक्षाके साथ चिकित्सा, शस्त्र क्रिया प्रसूतिशास्त्र, कौमारभृत्य, शालाक्यतन्त्र, आरोग्यशास्त्र, औषधधर्मशास्त्र, शारीर इन्द्रिय-विज्ञान के लिये चार वर्ष का समय पर्याप्त हो सकता है। हमारा प्राचीन व्यवहार, आयुर्वेद कुछ परिमित सीमा तक ही है, उसे नवीन ज्ञान के साथ आयत्त करने से हमारे वैद्य कायदे कचहरी के सर्वथा योग्य हो सकेंगे। अष्टांग में मानसशास्त्र और मानसिक रोग विज्ञान में कुछ नवीनता के साथ योग-सांख्य आदि के आधार को भी लेकर पूर्ति करनी होगी।

परीक्षा— पढ़ाने के ढङ्ग अपने प्राचीनकाल के उत्तम थे, उससे विद्यार्थी में शास्त्र की पूर्ण योग्यता आजाती थी, किन्तु आजकल अध्यापक आकर व्याख्यान दे देते हैं। इससे विद्यार्थियों को सार्वजनिक जानकारी तो हो ही जाती हो किन्तु संहिताग्रन्थों की नींव कच्ची रह जाती है। पुस्तक एक बार पूर्ण होने पर फिर व्याख्यानों का प्रबन्ध अच्छा हो सकता है; किन्तु इसे ही शिक्षा का आधार मानना चिन्त्य है। परीक्षा की वर्तमान पद्धति भी विद्यार्थी को रट्टू बना देता है, उसकी तर्क और विचारशक्ति का विकास इस पद्धति से नहीं हो पाता। प्रतिवर्ष जो विद्या पूर्ण हो जाए उनकी परीक्षा वर्ष प्रतिवर्ष होती रहे तो विद्यार्थियों पर विषयों का बोझा नहीं बढ़ता। किसी विषय में अनुत्तीर्ण होने से सबमें अनुत्तीर्ण समझना भी घातक प्रथा है। आयुर्वेद विद्यापीठ ने पहले यह क्रम चलाया था कि जो जिस विषय में उत्तीर्ण हो जाय उसे उसकी छूट मिल जानी चाहिए। परीक्षार्थियों की सुविधा की दृष्टि से यह प्रथा आवश्यक है। अगले वर्ष परी-

चार्थी को अनुत्तीर्ण विषय में ही परीक्षा देनी चाहिये। हां, पुस्तकी ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष कर्माभ्यास और प्रयोग सम्बन्धी ज्ञान की जानकारी की परीक्षा में अधिक जोर देना चाहिये।

शल्यकर्म—वेद और पुराणों में ऐसे बहुत उदारण मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि आर्यों ने शल्यशास्त्र में चरमोन्नति प्राप्त की थी किन्तु उन कथाओं से आज हमें सन्तोष नहीं हो सकता बल्कि उसकी प्राप्ति के लिये हमारी जिज्ञासा और प्रबल होती है। इतने ऊँचे चढ़कर भी हम आज अपने को खन्दक में गिरा हुआ पाते हैं, उस से हमें अपनी परिस्थिति के प्रबल असंतोष उत्पन्न होता है। यह सच है कि हमारी चिकित्सा इतनी शक्तिशालि है कि कठिनाई से १०० में चार पांच रोगी ही ऐसे मिलेंगे जिसके लिये शल्यकर्म की आवश्यकता प्रतीत होती है किन्तु उस आवश्यकता थी पूर्ति भी हमारे ही हाथ से होनो चाहिये। कुछ रोग स्वभावतः ऐसे होते हैं जिन में औषध का असर नहीं होता। उन में रोगोत्पादक कारणों को दूर कर शरीर के दूषित द्रव्य काटकर बाहर निकालना ही पड़ता है। गुल्म, अर्बुद, विद्रधि, भगंदर, नाड़ीव्रण आदि रोग चिकित्सा साध्य न होने पर शस्त्र चिकित्सा द्वारा साध्य बनानें पड़तें है। कुछ रोगों में रोग द्रव्य वमन-विरेचन-स्वेदन आदि क्रियाओं से आप ही शरीर के बाहर हो जाते हैं। कुछ में औषधि की सहायता लेनी पड़ती मैं और कुछ में शल्य का सहारा लेना अनिवार्य होता वै। वैद्यों को आज भी इन तीनों प्रकार की क्रियाओं में निष्णात होना चाहिए। शस्त्रचिकित्सा के अभ्यास से वैद्य का डरपोकन निकल जाता है, उस में धैर्य

की वृद्धि और बुद्धि सम्भ्रमका निराकरण हो जाता है। तत्काल कर्तव्य प्रेरणा की समझ उत्पन्न होती है। आज भले ही हमें यह कला डाक्टरों से सीखनी पड़े; परन्तु एक बार सीखने पर हमें आधार भूत आयुर्वेद को बना कर अपने अष्टांग प्रधान इस अङ्ग की पूर्ति और वृद्धि करनी होगी। हमारे प्रक्षालन क्वाथ तथा मल्हम आदि आज भी हमारी मान मर्यादा कायम रखने में समर्थ होंगे। सहायतार्थ कुछ विधि और वस्तु का अपनाना दूसरी बात है। समयानुसार उसका ग्रहण सर्वत्र होना है और होता रहेगा।

स्नातकोत्तर शिक्षा—साधारण शिक्षण-काल में विद्यार्थी का लक्ष्य गम्भीर ज्ञान प्राप्ति की ओर उतना नहीं रहता जितना परीक्षा पास कर उपाधि प्राप्त करने की ओर रहता है। इसके सिवाय किसी विषय की चूड़ान्त प्राप्ति अष्टमल शिक्षा के साथ हो भी नहीं सकती। इस लिये यदि सरकार न सुने तो आयुर्वेद विद्यापीठ और गुरुकुल जैसी स्वतन्त्र शिक्षण संस्थाओं को स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। इस में भिन्न भिन्न विषय अकेले विशेष रूप से सिखाने का प्रबन्ध रहे जिससे किसी एक विषय की यत्परोनास्ति शिक्षा प्राप्त की जा सके। इसके सिवाय विद्यालय की शिक्षा में यदि शुद्ध आयुर्वेद की ही शिक्षा देने का प्रबन्ध हो तो स्नातकोत्तर परीक्षा में तुलनात्मक ज्ञानकी प्राप्ति कराई जा सके। आयुर्वेद-दर्शन बहुत गम्भीर विषय है उसका पूर्ण ज्ञान कालेजकी शिक्षा के समय हो नहीं पाता। उसका सम्बन्ध योगशास्त्र, न्यायशास्त्र, सांख्यशास्त्र आदि से घनिष्ट है अतएव पूर्ण दर्शन ज्ञान स्नातकोत्तर महाविद्यालय में हो सकता है। हमारा प्रधान लक्ष्य आयुर्वैदिक स्वराज्य प्राप्त करना है और आयुर्वेद को अन्य देशी पद्धति के साथ राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धतिके

स्वरूप में जनमान्य के साथ ही राज्यमान्य भी बनाना है। जब-राज्य और देश का स्वास्थ्य संरक्षण और चिकित्सा कार्य हमारी नीति और शैली से सञ्चालित होना तय हो तब हममें वह योग्यता भी होनी चाहिये जिससे हम उस भारको वहन कर वर्तमान जगत् गति के अनुसार सञ्चालित कर सकें। ऐसी दशा में हमें पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेंट और मेडिकल डिपार्टमेंट को सञ्चालित करने योग्य जितने विषयों का ज्ञान अपेक्षित है वह सब ऐसे स्नातकों त्तर विद्यालयों में करना पड़ेगा कुछ ऐसे विषय हैं जिनकी-चिकित्सा क्रम में नित्य आवश्यकता तो नहीं पड़ती किन्तु विशाल ज्ञान विस्तार के लिए उनका जानना अच्छा है। ऐसे स्नातकोत्तर विद्यालय में उनका भी प्रबन्ध करना चाहिए। प्राचीन विश्वास परम्परा के अनुसार आयुष्यक्रम और ग्रहगति एवं उसके प्रभाव को जानने के लिये ज्योतिष ज्ञान की भी अपेक्षा है। प्राणीशास्त्र, सापेक्ष शरीर शास्त्र (कम्पैरेटिवएनाटमी)वनस्पतिशास्त्र, मेटेरियामेडिकाके औषधी द्रव्य और गणपाठ आदि का ज्ञान स्नातकोत्तर विद्यालय में ही कराना सयुक्तिक है। कालेज शिक्षण के साथ इन्हें सम्मिलित करना विद्यार्थियों पर अधिक बोझा लादना है। चिकित्साशास्त्र से इनका सम्बन्ध कुछ दूर का ही है। अब धीरे २ हमारे देश में भी यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि प्रत्येक वैद्य चिकित्साकर्म में प्रवृत्त होकर इतना समय नहीं निकाल सकता कि वह सब प्रकार की औषधियां भी तैयार कर सके। ऐसी तैयारी का भार एक विशेष वर्ग पर डालना श्रमविभाग के बटवारे के तत्व के अनुकूल है। अतएव यह समुचित प्रतीत होता है कि हम औषधि निर्माणशास्त्र का अलग संकलन कर उसकी शिक्षा की भी व्यवस्था करें। सामान्य चिकित्सकों पर इसका

अधिक बोझ न डालें। इसी के साथ पदार्थविज्ञान और रसायन-शास्त्र का उच्चज्ञान भी अधिक होगा।

इस प्रकार का प्रबन्ध होने से जिसे जिस विषय को विशेष रुचि होगी और जिसे जिस विभाग के कार्य में प्रवृत्त होना होगा वह उस विषय की पूर्ण शिक्षा प्राप्त करेगा। जिससे उस विषय में वह आदर्श व्यक्ति होगा। अपने उद्योग में वह गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। शास्त्र के मर्म समझकर बेखटके अपना-कार्य निर्वाह करेगा। विद्यालय की शिक्षा के समय बहुत से विषयों के मेल होने से विद्यार्थी घबड़ा जाता है इस प्रबन्ध से उसको बचत होगी। अवश्य ही ऐसे स्नातकोत्तर महाविद्यालय में सब शिक्षा सप्रयोग रखनी पड़ेगी।

अनुसन्धान— वैद्यों के ऊपर जो सबसे अधिक तानेजनी होती है वह नवीन अनुसन्धान के सम्बन्ध में है। कहा जाता है कि वैद्य लोग नयी खोज नहीं करते, वही हजारों वर्षों की पुरानी बातें चली आ रही हैं। यद्यपि यह आक्षेप तत्वतः ठीक नहीं है। हमारा आयुर्वेद ऐसे स्थिर सिद्धान्तों पर स्थित है कि उसमें नित्य फेरबदल की अधिक सम्भावना नहीं है। हमारे ऋषियों के त्रिकालदर्शी ज्ञान ने हमें इतना पुष्ट बना दिया है कि हम अनिश्चित स्थिति में नही हैं तथापि प्रकीर्ण विषयों में रोगों की स्थिति और उपाय योजना में, वस्तु परीक्षा में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन में बराबर अनुसन्धान और नवीन ज्ञान की पूर्ति अपेक्षित है। पहले से हम ऐसा करते भी आये हैं औरआज भी हमारी उसके लिये तैयारी है।

किन्तु ऐसे काम में अधिक द्रव्य, अधिक साधन और राजकीय तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुविधाओं की अपेक्षा होती है। जब तक इसमें पूर्ण पुजाकीय और राजकीय सहारा न हो तब तक पूर्ण सफलता नहीं हो सकती। किसी भी देश के ज्ञान विज्ञान ने जो उन्नति की है उसमें राष्ट्रीय और राजकीय सहायता पूर्ण रूपसे रही है। प्रजा और राजा के स्वार्थों में समानता होनी चाहिए। कम से कम दोनों में घनिष्ट सहानुभूति का सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये। देश का असंख्य धन औषधियों के रूप में विदेशों को जाता है। यदि हमें सरकारी सहायता प्राप्त हो तो हम इसे अधिकांश रोक सकते हैं। यही नहीं अपना व्यवसाय विदेशों तक फैला कर अपनी चिकित्सा पद्धति और औषधियों से वहां वालों को लाभान्वित कर सकते हैं। उद्योग धन्धों की वृद्धि से राष्ट्र को भी सम्मृद्धि हो सकती है। हमारा जगद्गुरु आयुर्वेद फिर अपना गुरुत्व प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेद समस्त मानवजाति का कल्याण चाहता है अपने ज्ञान-विज्ञान और अनुसन्धानों से हम कीर्तिशाली बन संसार में सुख का समुद्र लहरा देना चाहते हैं। स्वास्थ्य और आरोग्यता के साथ व्यक्तियोंका नैतिक और मानसिक बल बढ़ा हुआ देखना चाहते हैं। अपनी शिक्षा और अनुभव की वृद्धि से राष्ट्र का वैभव और सुख समृद्धि बढ़ाना चाहते हैं। किन्तु अपेक्षित सहायता के बिना इस की सिद्धि कैसे होगी? हम चाहते हैं। कि सरकार इस में आगे हो। वह स्वयं कुछ करे और हमारी जो राष्ट्रीय संस्थाएं ऐसे कार्य में प्रवृत्तहों उन्हें उदार सहायता दें। हमारी राष्ट्रीय संस्थाएं राजा प्रजा दोनों का सहारा पा कर सफलता प्राप्त करें।

स्वावलम्बन की आवश्यकता—एक कटु सत्य कहने के लिये मुझे आप क्षमा करें। हम चाहते हैं कि सरकार और जनता हमारे साथ सहानुभूति प्रदर्शित करे, हमारी सहायता करें; किन्तु अपना मार्ग निश्चय हमीं को करने दे। हम स्वावलम्बन के इस सिद्धान्त पर आगे बढ़ें। प्रत्यक्ष शारीर, शवच्छेद, फ़िजिक्स, कैमिस्ट्री और शल्य कर्म में हमें कुछ दिनों तक पाश्चात्य ढंग के डाक्टरों और वैज्ञानिकों की सहायता की अपेक्षा होगी, उसे हम अवश्य स्वीकार करेंगे। किन्तु इनकी जानकारी प्राप्त कर उस ज्ञान का उपयोग हम अपने ढंग पर आत्मसात करके ही करना चाहते हैं। अतएव हम यह नहीं चाहते कि हमारी शिक्षण संस्थाओं में डाक्टरों की प्रधानता और अधिकता रहे। हम उनसे सहायता लेंगे किन्तु उन्हें अपना मस्तिष्क सौंपने को तैयार नहीं हैं। इसलिये नहीं कि हमें डाक्टरों से विरोध है या हम उनसे घृणा करते हैं, बल्कि इसलिये कि वे हमारी परम्परा, हमारे विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त और हमारी भावनाओं से परिचित नहीं हैं। वे जैसा जानते हैं वैसा सिखाते हैं, इसमें उनका दोष नहीं किन्तु उसे हम किस प्रकार ग्रहण करें यह हमीं निश्चय कर सकते हैं। उनके ढंग का आग्रह होने से हम जैसा बनना चाहते हैं वैसा बन नहीं सकेंगे। "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरः" का दृश्य ही हमें देखने को मिलेगा। आजकल आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक पद पर किसी डाक्टर को बैठाने की प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है। इस गुरुकुल में भी अध्यापक और परीक्षक अधिकांश डाक्टर हैं। हो सकता है कि यहां के अधिकांश डाक्टर यहीं के स्नातक हैं अतएव उनके द्वारा विपरीत भावना का प्रचार न होता हो, किन्तु प्रायः आयुर्वेद कालेजों

के नये स्नातकों में डाक्टर बनने की, डाक्टर कहलाने की और वेशभूषा में भी डाक्टरी ढंग प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। यह सम्भव है कि विद्यालय में यह प्रवृत्ति अपने डाक्टर गुरुओं के कारण आती हो। इस प्रवृत्ति को हमें रोकना है। वैद्य शब्द का महत्व बहुत ऊंचा है। वह पूर्ण विद्वान का द्योतक है, डाक्टर शब्द भी प्रायः उसीका अनुवाद है। मूल छोड़ कर अनुवाद को भूषण समझना सरासर भूल है। इसके सिवाय ऐसी प्रवृत्ति से हमारे काय और विचार में भी संकरत्व आता है। अतएव हमें अपने शिक्षणालयों में इस प्रधानता में रुकावट डालने की आवश्यकता है। अपनी आवश्यकता, अपनी परम्परा, अपने सिद्धान्त के अनुसार हमें स्वावलम्बन के साथ बढ़ना होगा और बढ़कर सिद्धि तथा समृद्धि प्राप्त करनी होगी। जहां जहां डाक्टरों की प्रधानता हुई है वहां वैद्य निम्न कोटि में ही डाल दिये गये हैं। जहां डाक्टर और वैद्यों का नियुक्तिका प्रश्न होता है, वहां वैद्यों का ग्रेड उनसे नीचे रखा जाता है। यदि वैद्य की नियुक्ति पचास, साठ से होगी तो डाक्टर की पचहत्तर सौ से होगी। यह पंक्ति भेद भी हमारी सहनशीलता को ठेस पहुँचाता है।

तात्कालिक आवश्यकता

मारीचमाया—हमारी साधारण योजनाएं जो समय पाकर पूर्णता के मार्ग पर आवेंगी। राष्ट्रीय सरकार सम्भवतः इधर अपना ध्यान आकर्षित करें। कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर तुरन्त ध्यान न देने से आयुर्वेद को हानि पहुंच सकती है। एक षड्यन्त्र मैडिकल कौंसिल के द्वारा रचा गया है। आयुर्वेद के प्रति महा-

नुभूति दिखाते हुए सरकार से कहा गया है देशी चिकित्सा पद्धतिको अब तक उचित उन्नति और सहायता नहीं की गयी अब उसकी सहायता कर उस इस तरह तक पहुँचा दिया जाय वह समय ला दिया जाना चाहिये कि आयुर्वेद और एलोपैथिक में कोई अन्त न रह जाय। इस मारीचमाया के द्वारा चमकीला स्वरूप दिखा कर भीतर यह कपट किया हुआ है कि कुछ दिनों में आयुर्वेद एलोपैथी में लीन हो जाय उसका अस्तित्व मिट जाय। मद्रास में भी इसी प्रकार की माया का प्रारम्भ होने वाला है। जहां डाक्टरों को कुछ आयुर्वेद औषधियां सिखा कर यह का जाने वाला है कि आयुर्वेद की औषधियों का प्रचार तो हो गया अब और क्या चाहिये ? हमें इस माया में न भूल कर स्पष्ट कह देना चाहिये कि आयुर्वेद की स्वतन्त्र परम्परा है। उसका स्वतन्त्र विज्ञान है, उसका स्वतन्त्र विधान है। उसकी उन्नति उसी के ढंग पर हो सकती है। गङ्गा मदार का मेला नहीं हो सकेगा। ऐसा ही है तो वैद्यों को हीं एलोपैथी की कुछ बातें बतलाकर वह समय क्यों न लाया जाय कि इस देश की सारी आवश्यकता वैद्यों से ही पूरी हो जाय, एलोपैथी की आवश्यकता न रहे।

आयुर्वेद की प्रधानता— अभी परिस्थिति यह है कि प्रत्येक प्रान्त में साठ, सत्तर लाख रुपया एलोपैथी के पीछे खर्च होता है और आयुर्वेद के पीछे कहीं लाख दो लाख खर्च होता है, कहीं वह भी नहीं। हमारी आवाज़ होनी चाहिये कि अधिकांश रुपया आयुर्वेद की उन्नति और उसी के द्वारा मेडिकल और पब्लिक हेल्थ विभाग के द्वारा काय सम्पादन में लगाया जाय। एलोपैथी के लिये उतना ही खर्च हो जितना नितान्त आवश्यक हो। दोनों

वर्षों से एलोपैथी का दुलार होते आया है तो भी वह देश की आवश्यकता पूर्ण करने में समर्थ न हो पायी। अब उसे कुछ दिनों के लिये उस स्थिति में छोड़ दिया जाय जिस में अब तक आयुर्वेद पड़ा हुआ था। आयुर्वेद तो अपना अस्तित्व बनाये रख सका अब देखा जाय कि बीस पचीस वर्ष में इस की क्या दशा होनी है।

युद्धोत्तर निर्माण— युद्धोत्तर निर्माण योजना में सरकार एलोपैथी के लिये अनाप-शनाप खर्च करने वाली है। हमें तीव्र आन्दोलन कर तुरन्त लाल झण्डी दिखा देनी चाहिये। बहुत हो चुका अब देश को ऐलोपैथी कालेजों की आवश्यकता नहीं है। जितने कालेज हैं वे काफी हैं। अब जितने कालेज खोलने हों वे आयुर्वेदिक हों। कोई प्रान्त आयुर्वेदिक कालेजों से खाली न रहे। राष्ट्रीय आयुर्वेदिक संस्थाओं और विद्यालयों के साथ सरकारी बर्ताव सौतेली मा का सा न रहे, उन्हें सरकारी खजाने से आवश्यकतानुसार सहायता दी जाय। उसकी प्रयोगशालाओं अस्पतालों और अनुशीलन विभागों को उदारता के साथ सहायता मिले।

देहातों की योजना— सरकार व्यर्थ में डाक्टरों को देहातों में बसाने और देहातों में एलोपैथी डिसपेंसरी खोलने की योजना सोच रही है। यह योजना असफल होगी। वैद्यों के समान जनता में हिलमिल कर, गरीबों को गरीबी में सहानुभूति के साथ शामिल होकर डाक्टर लोग काम नहीं कर सकेंगे। वैद्यों की शिक्षा धैर्य और दयालुता तथा पवित्रता की नींव पर होती है, फीस और रकम पर उनका प्रधान ध्यान नहीं रहता। वैद्य

अपने आसपास की जड़ी बूटियों से भी काम निकल सकते हैं, डाक्टरों का कार्य तैयार विदेशी दवाइयों के बिना नहीं चलेगा। हमने विदेशी दवाफरोसों की दवा बिकवाने का ठेका नहीं लिया। हमें माफ किया जाय। देहातों में एक भी डिसपेंसरी की आवश्यकता नहीं है। देहातों में सरकार जितने भी औषधालय खोल सकती है वे आयुर्वेदिक हों– देशी चिकित्सा पद्धति के हों।

हमारे कुछ नेताओं का भी यह भ्रमपूर्ण विचार है। जैसा कि कुछ दिन पहले जनता के हृदय सम्राट पं० जवाहर लालनेहरू जी ने भी व्यक्त किया था। कि स्वराज्य होने पर देहातों के लिये हमें हजारों डाक्टरों की आवश्यकता होगी। किन्तु हमें ऊँची और आग्रह पूर्ण आवाज में कह देना चाहिये कि नहीं महाराज! वस्त्र स्वदेशी. व्यवहार की सब वस्तु स्वदेशी, शासन स्वदेशी, अतएव चिकित्सापद्धति भी स्वदेशी ही चाहिये। देश में हजारों लाखों वैद्य-हकीम हैं, पहले उन्हें काम सौंपिये। जो काम उनसे न हो सके केवल उसी के लिये और उसी अन्दाज से डाक्टरों की नियुक्ति की बात सोचिये।

देशभर में आयुर्वेदिक औषधालय, आयुर्वेदिक अस्पताल, आयुर्वेदिक सूतिकागार और आयुर्वेदिक विद्यालय खुलने चाहिये। गर्भाशय में बालक आयुर्वेदिक विधि से पुष्ट हो, उत्पन्न होते ही आयुर्वेदिक स्वर्णौषधि पावें, जन्म से ही स्वदेशी घूंटी पीवे, स्वदेशी भाव से पालित होकर पूर्ण स्वदेश भक्त बने। ऐसा ही स्वदेशभक्त स्वराज्य साधनों में सफल हो सकता है। इस प्रकार आयुर्वेदिक स्वराज्य राजनैतिक स्वराज्य की कुँजी है। आयुर्वेदिक

स्वराज्य में बिना राजनैतिक स्वराज्य पूर्ण नहीं होगा, निर्मल और आभा युक्त नहीं होगा। आयुर्वेदिक प्राणाचार्य ही स्वदेशियों में सच्चा प्राण सञ्चार कर सकेंगे। माता कस्तूरबा स्मारक योजना में भी आयुर्वेदिक विधि की ही प्रधानता होनी चाहिये। सारांश यह कि हमारे प्रयत्नों का उद्देश्य देश में आयुर्वेदिक स्वराज्य की स्थापना होनी चाहिये। जो भी कर्ता और कार्य हमारे उस उद्देश्य में बाधक हो सकते हैं, जो भी कार्य आयुर्वेद की उन्नति के मार्ग में अवरोधक हो सकते हैं, वैद्यों की गुणगरिमा बढ़ाने में रुकावट डाल सकते हैं, आयुर्वेद और वैद्यों का गौरव बढ़ाने में हमारे सहायक नहीं हो सकते उनके प्रतिरोध का अपनी पूरी शक्ति से सामना करना है। डङ्के की चोट हमें अपना अभिप्राय देशवासियों को, देश के नेताओं को सुना देना है। राजनैतिक तिरंगे झण्डे के के साथ हमारे त्रिगुण-त्रिदोष का भी तिरंगा झण्डा ऊंचा फहराना चाहिए। सारी राष्ट्रीय सहानुभूति और सहायता के साथ देशी चिकित्सा पद्धति का सिर ऊंचा होना चाहिये आयुर्वेदिक स्वराज्य ही देश को शक्ति, स्वास्थ और उत्साह देगा। वही हम में सच्ची जीवनी शक्ति का संचार करेगा।

इतिशम्।